

भारत की भाषा समस्या : विगत से आगत तक

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ—226017, उ.प्र.

शोध सारांश

वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी बिना किसी सरकारी सहारे के अपने दमखम से आगे बढ़ रही है। सरकारें इस भाषा की जितनी भी उपेक्षा कर सकती हैं वह कर रही हैं। सरकारी स्तर पर राजभाषा विभाग भी स्थापित होने के बावजूद यहाँ करने के लिए बहुत कुछ होता नहीं है क्योंकि सरकार की दृष्टि में यहाँ का स्कोप न के बराबर है। लेकिन इन सबके बाद हिन्दी बोलने-समझने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। वैश्विक आंकड़े इस बात के गवाह हैं कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या दुनिया में पहले नम्बर पर हो गयी है। चीनी भाषा बोलने वालों की संख्या से हिन्दी अधिक संख्या में बोली जानी वाली भाषा हो गयी है। यह कागज का लेख नहीं, आँखिन की देखी है।

Keywords: भारत, राजभाषा हिन्दी, उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी, भाषा समस्या

आज हम अपने राष्ट्रीय जीवन में जिन संकटों के संक्रमण काल के दौर से गुजर रहे हैं। उनमें भाषा की समस्या अति महत्वपूर्ण है। लेकिन कुछ लोगों का मानना है कि जब देश में भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, खाद्यान्न समस्या, आतंकवाद, सम्प्रदायवाद इत्यादि समस्याओं का बोलबाला हो तब उसी स्थितियों में भाषा का प्रश्न, हिन्दी का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। वैसे महत्वपूर्ण क्या है क्या नहीं है— इसका निर्णय क्षणिक आवेश में नहीं लिया जा सकता है। आज का जनमानस अधिकतर स्थितियों में शासन के प्रति उदासीन इसलिए है कि वह उसे एक तानाशाही शासक के रूप में देखता है। इसके पीछे की प्रमुख वजह यह है कि जनता और शासक के बीच कोई सार्वजनिक भाषा नहीं है। और जो है भी उसे सरकारी अफसर कुछ अंग्रेजी

समर्थक और कुछ स्वार्थी वर्ग के लोग उसे फलने-फूलने नहीं देना चाहते हैं। जिसका परिणाम यह हो रहा है कि भाषा के प्रति यह दूरियाँ बढ़ती जाती हैं और हम किसी भी प्रकार से उसे मिटा पाने में असमर्थ हैं।

भारत की भाषा समस्या इतनी उलझ गई है कि राजनीतिज्ञ इसे चाहकर भी सुलझा नहीं पा रहे हैं। और अनेक क्षेत्रों में भाषा के प्रति समय-समय पर अनेक विरोध के स्वर दिखाई दे जाते हैं। अधिकतर लोगों का मानना है कि प्रारम्भ में इस भाषाई समस्या को जिस तरह सुलझाना चाहिए उस तरह से इसे सुलझाया नहीं गया है। भाषा के प्रति सरकारी नीतियाँ इसके लिए दोषी हैं।

हिन्दी भाषी प्रदेश में कोई भी दल भाषा के सवाल को नज़रन्दाज़ करके शक्तिशाली नहीं बन सकता। अंग्रेजी को हटाने और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग जनता की न्यायपूर्ण साम्राज्य विरोधी राष्ट्रीय मांग है। प्रगतिशील नेताओं को उसका समर्थन ही नहीं करना चाहिए, आगे बढ़कर उसके लिए आन्दोलन करना चाहिए वे लोग ही विभिन्न भाषाओं के उचित अधिकारों की रक्षा करते हुए हिन्दी के लिए सही आन्दोलन कर सकते हैं। वे अपना उत्तरदायित्व न निबाहेंगे तो दक्षिणपंथी ताकतों को अवसर मिलेगा कि वे सही मांग के लिए गलत ढंग से आन्दोलन चलाएँ, जातीय और सामप्रदायिक विद्वेष फैलाएँ और जनवादी पार्टियों के दमन के लिए आवश्यक तैयारी करें। जो प्रगतिशील नेता अब भी बेखबर रहते हैं, वे वस्तुगत रूप से जनतंत्र का नाश करने और तानाशाही को लाने के लिए जिम्मेदार होंगे।¹

भारत में अनेक धर्म, संस्कृतियों, अनेक जातियाँ और अनेक भाषाओं का होना इसके अनुरूप माना गया है। यूरोप में से यदि रूस को हटा दिया जाए तो शेष का लगभग दो-तिहाई भाग भारत से बड़ा नहीं है। इस प्रकार यह महाद्वीप जैसा ही है, जो भारतीय द्रविड़ आस्ट्रोएशियाटिक और चीनी इन चार परिवारों की हैं। यहाँ पर भाषाओं और बोलियों की संख्या लगभग सात सौ के करीब है। इनमें प्रमुख हैं कश्मीरी, सिंधी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, बँगला, उड़िया, आसामी और हिन्दी। (हिन्दी, उर्दू व्याकरणक दृष्टि से एक हैं। वस्तुतः एक भाषा की ही एक शैली संस्कृत निष्ठ, दूसरी फारसी-अरबी शब्दों से लदी, और तीसरी बीच की है, जिन्हें क्रमशः हिन्दी, उर्दू हिन्दुस्तानी कहते हैं। इसलिए यहां उर्दू को अलग नहीं रखा गया है। यों संविधान में उर्दू एक अलग भाषा है किन्तु यहाँ हम हिन्दी-उर्दू के एक होने की बात भाषा विज्ञान के आधार पर कह रहे हैं।) इनमें उत्तरी भाषाओं की आर्य-भाषाओं में

शब्द-समूह के साथ-साथ साम्य भी है। दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं को उत्तर भारत की भाषाओं से केवल शब्दावली में ही न्यूनाधिक समानता है।²

हिन्दुस्तानी क्षेत्र तथा समस्त भारत की राजभाषा हिन्दी, उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी हो-इस सन्दर्भ में भारत की भाषा समस्या विशेष महत्वपूर्ण हो गई है। सबसे कटु विवाद समस्या के इसी पक्ष को लेकर है। प्रमुख समस्याओं (और विशेष रूप से सामाजिक) से जनता का ध्यान हटाने में उच्च वर्गों के पास हिन्दी, उर्दू समस्या सबसे महत्वपूर्ण साधन रही है। साम्प्रदायिक विद्वेष पैदा करने के लिए इस समस्या का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है।

हमारा समसामयिक इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि भाषा की समस्या इतने महत्व की हो गई है जिससे टकराकर राष्ट्रीय एकता में छेद पड़ सकता है। स्वतंत्रता के पहले तीन दशकों में भारत विभिन्न धार्मिक भावनाओं के परिवेश में भाषाई समस्या को लेकर जूझता रहा। भाषा महज, सम्प्रेक्षण का माध्यम है। और इसके साथ ही उसके सांस्कृतिक परिवेश में उसका अपना गहरा रंग रहता है जिससे रंग की छाप उसके बोलने वालों में भेद पैदा कर सकती है। इसलिए एक ही भाषा बोलने वालों में भी कभी धर्म, कभी संस्कृति, कभी इतिहास, कभी जाति के नाम पर सामाजिक दरारें पड़ सकती हैं। ऐसी दरारों से समाज को बचाने के लिए कितने ही आचार्यों ने उच्च आदर्शों के सहारे मानवता में निहित प्रेम और स्नेह के बल पर समन्वयात्मक दृष्टि का प्रचार किया और सफलता भी प्राप्त की। "व्यक्ति जब उच्च आदर्शों तथा अपने उभरते हुए व्यक्तित्व के सहारे इस समन्वय की ओर उन्मुख होता है और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपनी बौद्धिक शक्ति के बल पर समाज पर छा जाता है तो उसका परिणाम कल्याणकारी होता है। वह अपना नाम इतिहास के पन्नों में सुस्थिर बना लेता है। अन्यथा तात्कालिक

प्रयोजनों के लिए बहाई जाने वाली शक्ति, किसी भी व्यक्ति की निरर्थक हो जाती है और वह साथ देने वालों को भी डुबो देता है। इस तरह की कई धाराएँ एवं सन्दर्भ इतिहास में देखे जा सकते हैं।³

भारत जैसे देश में अनिवार्य राजभाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण है। क्योंकि बहुजातीय पूँजीवादी राज्यों में देखा जाता है कि इस तरह की अनिवार्य राजभाषा राजनीतिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में दूसरी भाषाओं के व्यवहार पर रोक लगाती है। ओर कभी-कभी उनके अधिकारों को एकदम अस्वीकार करती हैं। भारत के बड़े पूँजीपतियों से अन्य जातियों और समूहों का जो सम्बन्ध है, उसे देखते हुए राष्ट्रभाषा का प्रश्न अपना विशेष महत्व रखता है। भारत में कुछ ऐसे प्रदेश भी देखने को मिलते हैं जहाँ पर लोग मिली-जुली बोलियाँ बोलते हैं वहाँ सामंती सम्बन्ध अब भी कायम हैं। वहाँ के जातीय प्रदेशों में टकसाली जातीय भाषा का विकास अभी तक नहीं हो पाया है। ऐसे इलाकों में राजस्थान, हिमाचल प्रदेश हैं जहाँ पर पहाड़ी बोलियाँ आज भी बोली जाती हैं।

भाषा समस्या कबीलों और पिछड़े हुए जातीय गुटों के लिए महत्वपूर्ण है। विभिन्न पूँजीवादी गुट इनका शोषण करते हैं। उन्हें अपनी भाषाओं के व्यवहार करने का अधिकार नहीं है। उनकी भाषाओं का अस्तित्व ही अस्वीकृत कर दिया जाता है।⁴

मोटे तौर पर भाषा की समस्या को प्रमुखता तीन प्रकार से समझा जा सकता है—शासन और न्याय की भाषा की समस्या, शिक्षा के माध्यम की समस्या, विदेशों से सम्बन्ध की समस्या। इनमें प्रथम के केन्द्रीय, प्रान्तीय या प्रदेशीय और अंतः प्रांतीय और अंतः प्रदेशीय तीन रूप हैं—न्याय और शासन के लिए केन्द्र में किस भाषा का प्रयोग हो? प्रान्त या प्रदेश में किसका प्रयोग हो और एक प्रांत या एक प्रदेश से दूसरे के पत्र-व्यवहार में किसका प्रयोग हो? शिक्षा की

दृष्टि से भी समस्या तीन प्रकार की है : प्रारम्भिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, विश्वविद्यालयी शिक्षा। विदेशों से सम्बन्ध का अर्थ है, उनसे पत्र व्यवहार किस भाषा में दिया जाए? उत्तर के रूप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा का प्रयोग वहाँ के प्रांत (प्रदेश) में बोली जानी भाषा का ही प्रयोग होना चाहिए। यदि उस प्रांत में दो भाषाओं का प्रचलन है तो वहाँ पर दोनों भाषाओं का वैकल्पिक प्रयोग भी किया जा सकता है। यदि शिक्षा के माध्यम की बात है तो वह तीनों स्तरों—प्रारम्भिक, माध्यमिक, उच्च या विश्वविद्यालय पर प्रांतीय (प्रदेशिक) भाषा होगी। “अपनी भाषा के अतिरिक्त माध्यमिक स्तर से दो अन्य भाषाओं (एक अपने देश की राजभाषा और एक विदेशी भाषा) का अध्ययन होना चाहिए, जैसा कि रूस आदि कई समुन्नत देशों में है। इस प्रकार शिक्षा और प्रांतीय समस्याओं को हल करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं है। समस्या शेष रहती है केवल एक भाषा की, जिसमें न्याय तथा शासन आदि की दृष्टि से केन्द्र का, केन्द्र और प्रांतों (प्रदेशों) का तथा प्रांत (प्रदेश) और (प्रांत) प्रदेश का एवं वैदेशिक सम्बन्ध का काम किया जा सके।⁵

भारत में भाषा के मामलों में अंग्रेजी नीतिकारों अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति यह रही है कि आम जनता को असान और पिछड़ेपन की दशा में रखकर शासन व्यवस्था के लिए क्लर्कों की फौज तैयार करने के लिए अंग्रेजी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी और उसे शिक्षा का अनिवार्य माध्यम बनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि पाश्चात्य विचारधारा के सम्पर्क से भारतीय भाषाओं और साहित्य को जो भी लाभ हुआ, वह अप्रत्यक्ष रूप से हुआ। वह लाभ साम्राज्यवादियों की आशाओं के विपरीत था। अंग्रेजी हुकूमत समय-समय पर प्रचार करती रही कि भारत भाषाओं का अजायबघर है और उसमें जो भी एकता है वह इसलिए कि अंग्रेजी ने लिंगुआ फ्रांका की भूमिका पूरी की है। यूरोप के

अनेक प्रसिद्ध भाषा शास्त्रियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की यह समस्या मान ली, इसलिए भी कि अपने उपनिवेशों में वे भी यही खेल-खेल रहे थे।⁶

पुनः मूल प्रश्न पर आया जाए तो प्रारम्भ से ही भारतीय जनता ने माँग की कि शिक्षा, अदालत, कचहरी, शासन इत्यादि में अंग्रेजी की जगह उसकी अपनी भाषा की मान्यता प्रदान की जाए। वास्तव में यह तर्कपूर्ण बात थी। भारतीय आम जनमानस ने इसके लिए वैश्विक परिवेश के अनेक उदाहरण हैं कि वहाँ भी उनकी मूल भाषा का प्रयोग किया जाता है। भारतीयों का मानना है कि अमेरिका हो या चीन, रूस हो या फ्रांस, जर्मनी हो या जापान, दुनिया का एक भी महत्पूर्ण देश ऐसा नहीं है, जिसमें अपनी भाषाओं का वैसा अपमान होता है जैसा कि भारत में होता है। आज भी भारत भाषाई गुलामी की दृष्टि से दुनिया में सबसे आगे है।⁷

कुछ लोगों का मानना है कि वास्तव में भारत में भाषाओं की संख्या अत्यधिक है। यदि यहाँ इतनी अधिक भाषाएँ न होतीं तो भाषा की समस्या इतनी ज्वलंत समस्या की श्रेणी में कभी न होती। इसका उदाहरण कुछ आज वैज्ञानिक स्विटजरलैण्ड, कनाडा, बेल्जियम देशों के नाम लेकर करते हैं। इनका कहना है कि सभी भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए, जैसा कि इन देशों में होता है। वस्तुतः इन देशों में स्थिति ऐसी नहीं है। विशेषतः वैदेशिक सम्बन्ध एक से अधिक भाषाओं में करना तो बिल्कुल भी व्यावहारिक नहीं होगा। स्विटजरलैण्ड में भाषाएँ कई हैं, जिनमें प्रमुख फ्लेमिश, फ्रेंच और जर्मन हैं। केन्द्र का कार्य फ्लेमिश और फ्रेंच में होता है। वैदेशिक कार्यों में फ्लेमिश का प्रयोग होता है।⁸

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि वैदेशिक कार्यों के लिए तो हमें एक भाषा को चुनना होगा क्योंकि सभी भाषाएँ उसका माध्यम नहीं बन सकतीं। दूसरा यह कि

केन्द्र में एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग हो सकता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्थितियाँ कुछ अलग तरह की हैं क्योंकि यहाँ कई भाषाएँ ऐसी हैं जिनके बोलने वालों का प्रतिशत अच्छा खासा है। जैसे उदाहरण के रूप में कन्नड़ ऐसी भाषा है जो अधिक से अधिक लोगों द्वारा, लगभग दस प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती है। वहीं मराठी, बंगला, तेलुगू, तमिल, पंजाबी, गुजराती ऐसी भाषाएँ हैं जो कुछ बोलने वाले प्रतिशत में से दो से चार के बीच है। अतः यह कहना थोड़ा मुश्किल है कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में दो-तीन भाषाओं को चुनना थोड़ा कठिन कार्य है। इसलिए निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यावहारिक एवं आर्थिक दृष्टि से केन्द्रीय तथा अतः प्रांतीय (प्रदेशीय) आदि कार्यों के लिए भी एक भाषा को चुनना ही बेहतर एवं सुविधाजनक होगा।

इस सन्दर्भ में यहाँ एक समस्या उभरकर सामने आ रही है वह यह कि वह आखिर एक भाषा कौन सी हो जिसे सभी लोग मानते हों? और उसके द्वारा सभी कार्य प्रशासन एवं आमजन में किए जा सकें? उसे राष्ट्रभाषा कहा जाए या राजभाषा ? (यहाँ पर यह बताना अधिक समीचीन होगा कि किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा कहना भारत के प्रसंग में बहुत समीचीन नहीं कहा जा सकता है क्योंकि राष्ट्र की सभी भाषाएँ इस नाम की अधिकारिणी हैं।) इसके विकल्प के रूप में कुछ लोग संस्कृत का नाम लेते हैं और कहते हैं कि भारतीय एवं वैश्विक परिवेश में यह सबसे पुरानी भाषा है। तो वहीं दूसरी इसे जानने वालों का यह भी आरोप है कि संस्कृत अपनी व्याकरण की जटिलता एवं रूपाधिक्य के कारण अत्यन्त कठिन एवं दुरुह है एवं वर्तमान संदर्भों के लिए यह प्रासंगिक एवं कालजयी नहीं कही जा सकती है क्योंकि यह जीवितता के लिए सटीक नहीं है। सवा सौ अरब जनसंख्या वाले भारत में शायद ही हजार ही व्यक्ति मिलें जो इसे लिखने के साथ ही शुद्ध बोल पाते होंगे। डॉ० सुनीति कुमार

चैटर्जी ऐसे भाषा वैज्ञानिक हैं जिन्होंने संस्कृत के राजभाषा होने का समर्थन नहीं किया है। आपका मानना है कि "मुसलमान और ऐसे अनेक हिन्दू, जिनका मानसिक विकास संस्कृत के वातावरण में नहीं हुआ है, सरल संस्कृत को भी नहीं स्वीकार करेंगे। ऐसी स्थिति में संस्कृत की बात छोड़ देनी होगी।"⁹

संस्कृत नहीं तो फिर कौन सी ऐसी भाषा होनी चाहिए जिसे सर्वमान्यता का दर्जा दिया जा सके। कुछ लोगों की मान्यता यह है कि अंग्रेजी अधिक जनमानस समझ सकता है और वैश्विक परिदृश्य में इसके बोलने वाले अधिक संख्या में हैं इसलिए अंग्रेजी राजकाज की भाषा होनी चाहिए। लेकिन भारतीय परिदृश्य में एक स्वतंत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र के लिए यह बहुत ही अपमानजनक बात कही जा सकती है। कि वह अपनी भाषाओं को छोड़कर किसी आयातित विदेशी भाषा को इस सम्माननीय स्थान पर प्रतिष्ठित करे। जिस तरह भारत में सर्वोच्च पदों के लिए राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री एवं अन्य बड़े पदों के लिए भारतीयों का चुनाव करते हैं। उसी तरह यहाँ प्रयोग की जाने वाली भाषा का चयन देशीय आधार पर बोलने वालों के लिए किया जाना आवश्यक होना चाहिए। संस्कृत और अंग्रेजी के बाद फिर ऐसी कौन सी भाषा भारतीय परिदृश्य के लिए सफल कही जा सकती है जिसे बोलने वालों की संख्या अधिक होने के साथ ही संप्रेषणीयता की दृष्टि से सर्वमान्य हो। इस दृष्टि से हिन्दी ही एक मात्र ऐसी भाषा है जो अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में अधिक भूभाग तथा अधिक लोगों के द्वारा बोली व समझी जा सकती है। क्योंकि भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी क्षेत्रों में इसके बालने एवं समझने वाले आसानी से देखने को मिल जाते हैं।

डॉ० सुनीति कुमार चैटर्जी भारत के मूर्द्धन्य भाषा वैज्ञानिक माने जाते हैं। हिन्दी भाषा होने कारण उनकी ओर से हिन्दी के पक्ष में

पूर्वाग्रह का प्रश्न ही नहीं उठता कि उनके द्वारा हिन्दी के पक्ष में जितनी भी बातें की जा सकती हैं। उन सभी को उन्होंने बहुत ही आदर एवं तर्क के साथ कहीं हैं आप का मानना है कि "उक्त भाषाओं (भारतीय भाषाओं) में हिन्दी या हिन्दुस्तानी का स्थान सबसे आगे है। कुछ अंशों में हिन्दी भारत की सबसे महत्वपूर्ण भाषा है। हिन्दी या हिन्दुस्तानी घरेलू भाषा की दृष्टि से अवश्य केवल दक्षिण-पूर्वी पंजाब, पश्चिमी उ०प्र०, उत्तर पूर्वी मध्यप्रदेश, उत्तरी ग्वालियर तथा पूर्वी राजपूताना आदि कतिपय प्रदेशों में ही बोली जाती है: और यहाँ भी अधिकांश मार्गों में प्रादेशिक बोलियाँ हैं और केवल शहरों में हिन्दुस्तानी बोली जाती है। लेकिन फिर भी अपने दो रूपों—नागरी हिन्दी एवं उर्दू में हिन्दुस्तानी बंगला, आसाम, उड़ीसा, नेपाल, सिंध, गुजरात एवं महाराष्ट्र को छोड़कर समस्त बाकी भारत की सर्वमान्य भाषा है। गुजराती तथा मराठी बोलने वाली जनता नागरी हिन्दी को भली-भाँति पढ़ एवं समझ लेती है। इसके अतिरिक्त बोलचाल की हिन्दुस्तानी समझने में भी उसे कोई खास कठिनाई का अनुभव नहीं होता। राजपूताना एवं मालवा की जनता ने पिछली शताब्दियों के अपने उच्च कोटि के राजस्थानी पिंगल साहित्य के रहते हुए नागरी हिन्दी को अपना लिया है। कुछ थोड़े से सिक्खों एवं अन्य व्यक्तियों को छोड़कर बाकी सारे पंजाबी भी हिन्दुस्तानी का (नागरी हिन्दी या उर्दू रूप में) व्यवहार करते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के निवासियों ने भी हिन्दी को अपना लिया है.....
.....बंगाल, आसाम एवं उड़ीसा में भी बोलचाल की हिन्दी का एक सरल रूप सभी लोग समझते हैं.....
.....द्रविड़ भाषी दक्षिण में सबसे अधिक समझ ली जाने वाली भाषा हिन्दुस्तानी ही है, खासकर शहरों एवं बड़े तीर्थ स्थानों में। इसके अतिरिक्त फ्रिजी, ब्रिटिश गायन, त्रिनिदाद, वेस्ट इंडीज, दक्षिण तथा पूर्वी अफ्रीका, मारिशस, मलय तथा इंडोनेशिया आदि में भी हिन्दुस्तानी भाषियों की बस्तियाँ हैं।

प्रस्तुत कथन के सन्दर्भ में डॉ० सुनीति कुमार चटुर्ज्या लिखते हैं कि बोलने वालों एवं व्यवहार करने तथा समझने वालों की संख्या की दृष्टि से हिन्दुस्तानी का स्थान जगत की महान भाषाओं में तीसरा है, इसके पहले केवल चीनी भाषा का उत्तरी बोली तथा अंग्रेजी का स्थान है। इस प्रकार हिन्दी या हिन्दुस्तानी आज के भारतीयों के लिए एक बहुत बड़ा रिक्थ है। यह हमारे भाषा विषयक प्रकाश का एक महत्तम साधन तथा भारतीय एकता एवं राष्ट्रीयता का प्रतीक रूप है। वास्तव में हिन्दी ही भारत की भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर सकती है।¹⁰ इस कथन से सहमत होते हुए राहुत सांकृत्यायन का कथन है कि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी के आने से सांस्कृतिक और वैज्ञानिक प्रगति में बड़ी सहायता मिलेगी। क्योंकि इससे ज्ञान-विज्ञान के सीखने में बहुत आसानी होगी और राष्ट्रीय आत्माभिमान बढ़ेगा। औद्योगिक क्षेत्र में अपनी राष्ट्रीय भाषा के आने से यदि क्षति हो और अंग्रेजी से ही कल्याण होता हो तो अंग्रेजी भाषा वाले देशों को सबसे पिछड़ा रहना चाहिए।¹¹

विश्व जनसंख्या के स्रोत ग्रन्थ कहते हैं कि चीनी भाषियों की संख्या लगभग अस्सी करोड़ है लेकिन आप ज़रा चीन जाकर देखें, परखें इस दावे को। चीन की राजभाषा को मंडारिन कहते हैं, सभी चीनी मंडारिन नहीं बोलते। जो भाषा पेइचिंग में बोली जाती है, वह संघाई में नहीं बोली जाती और केन्टन में बोली जाती है वह नानचिंग में नहीं बोली जाती। लेकिन जो हिन्दी कश्मीरी में बोली जाती है, वह कन्याकुमारी में भी बोली जाती है। दक्षिण एशिया के लगभग सभी देशों में ज्यादातर लोग हिन्दी समझते हैं। जो भाषा दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक लगभग दर्जन भर देशों में मातृभाषा की तरह बोली जाती है और जिनके समझने वालों की संख्या एक अरब से ज्यादा है, उसके मुकाबले अंग्रेजी को खड़ा कर दिया जाता है, जो केवल साढ़े चार देशों की भाषा है और सारी दुनिया में

जिसे अपनी मातृभाषा कहने वाले लोगों की संख्या पैंतीस करोड़ भी नहीं है। अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और आधे कनाडा में ऐसे करोड़ों लोग हैं, जो अंग्रेजी नहीं जानते या उनकी मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है। ताजा आंकड़ों के अनुसार हिस्पाली बोलने वालों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से भी ज्यादा है। विश्व भाषाओं में अंग्रेजी का स्थान चौथा है फिर भी चीनी और हिन्दी के मुकाबले अंग्रेजी इसलिए विश्वभाषा बनी हुई है, कि वह महाप्रभुओं की भाषा है, महाशक्तियों की भाषा है, पूर्व गुलाम देशों के सत्ताधारियों की भाषा है। जब तक हिन्दी इस भाषाई गुलामी से मुक्त नहीं होती, वह विश्वभाषा कैसे बन सकती है? अंग्रेजी के अनैतिक वर्चस्व के विरुद्ध जो संग्राम महात्मा गांधी और डॉ० राम मनोहर लोहिया ने छेड़ा था, उसे ज्यादा प्रचंड रूप में चलाने की आज जरूरत है।.....ज्यों-ज्यों हिन्दी बढ़ेगी, लोकतंत्र बढ़ेगा और ज्यों-ज्यों लोकतंत्र बढ़ेगा, हिन्दी बढ़ेगी। हिन्दी के सूर्य को काई उदय होने से नहीं रोक सकेगा।¹²

भारत की भाषा समस्या के प्रति महात्मा गाँधी की नीति बहुत ही वस्तुपरक, व्यावहारिक तथा साफ थी। भाषा की इस समस्या के प्रति महात्मा जी ने सन् 1909 ई० में सर्वप्रथम अपने विचार इंडियन होमरूल में रखे। आपका मानना था कि हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का और पारसी को पर्शियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को हिन्दी और कुछ पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहने वाले हिन्दुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी होनी ही चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिन्दू-मुसलमानों के विचारों को ठीक रखने के लिए बहुतेरे हिन्दुस्तानियों का दोनों लिपियों को जानना जरूरी है। ऐसा होने पर हम अपने आपस

के व्यवहार में से अंग्रेजी को निकाल बाहर कर सकेंगे। महात्मा गाँधी मन से ही नहीं बल्कि कर्म से हिन्दी के प्रति आस्थावान थे। और पूरे भारत के लिए वे शिक्षा में हिन्दी (जिसे वे हिन्दुस्तानी भी कहा करते थे) को अनिवार्य विषय बनाने के पक्ष में थे। इस सम्बन्ध में सन् 1909 ई० से लेकर अपने जीवन काल के अंत तक वे बराबर लिखते और कहते रहे।... किन्तु साथ ही हिन्दी भाषी व्यक्ति के लिए किसी अन्य भाषा विशेषतः तमिल, तेलगु, कन्नड़, मल्यालम में से किसी एक को सीखना भी उनकी दृष्टि में उतना ही आवश्यक था। संस्कृत, अरबी, फारसी को वे शिक्षा में उचित स्थान देने के पक्ष पाती थे।¹³

स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि भारत की भाषा समस्या किसी भी दृष्टि से समस्या लगती ही नहीं है बल्कि कुछ सत्ताधारी राजनीतिज्ञों की वजह से इसमें समय-समय पर अवरोध आते रहते हैं। अब वह समय दूर नहीं कि आने वाले समय में हिन्दी रोजगार से लेकर जनसामान्य में व्यवहार होने वाली भाषा तो होगी ही, साथ ही इसकी संप्रेषणीयता की वजह से यह विश्व सिरमौर्य भाषा बनने से इसे भविष्यमें कोई रोक नहीं सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा राम विलास, भारत की भाषा समस्या—राज कमल प्रकाशन—1 बी नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, तीसरा संस्करण—2014, पृ०199
2. तिवारी डॉ० भोलानाथ, राजभाषा हिन्दी—प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार दिल्ली 110006, प्रथम संस्करण—1952, पृ०17
3. सत्यनारायण डॉ० मोटुरी, समन्वय का सूत्र : हिन्दी—संस्कृति भवन, वाणगंगा, भोपाल—462003 , पृ०32—33
4. शर्मा राम विलास, भारत की भाषा समस्या—राज कमल प्रकाशन—1 बी नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, तीसरा संस्करण—2014, पृ०69
5. तिवारी डॉ० भोलानाथ, राजभाषा हिन्दी—प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार दिल्ली 110006, प्रथम संस्करण—1952, पृ०18
6. शर्मा राम विलास, भारत की भाषा समस्या—राज कमल प्रकाशन—1 बी नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली—110002, तीसरा संस्करण—2014—पृ०69
7. वैदिक डॉ० वेद प्रताप, हिन्दी कैसे बने विश्वभाषा—वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली—110002, प्र.सं.—2014, पृ०63—64
8. तिवारी डॉ० भोलानाथ, राजभाषा हिन्दी—प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार दिल्ली 110006, प्रथम संस्करण—1952, पृ०18
9. चैटजी डॉ० सुनीति कुमार, भारत की भाषा सम्बन्धी समस्याएँ—पृ०60
10. चाटुर्ज्या डॉ० सुनीति कुमार, भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—राजकमल प्रकाशन, 1 बी नेताजी सुभाष चन्द्र मार्ग, नई दिल्ली—110002, पांचवा संस्करण—1989, पृ०147—149

11. सांकृत्यायन राहुल, राष्ट्रभाषा हिन्दी
—राधाकृष्ण प्रकाशन, जी-17, जगतपुरी
दिल्ली-110051, प्र. संस्करण-2002,
आवृत्ति-2004, पृ068
12. वैदिक डॉ० वेद प्रताप, हिन्दी कैसे बने
विश्वभाषा- 4695, 21 ए, दरियागंज, नई
दिल्ली-110002, प्र.सं. 2014, पृ015-16
13. तिवारी डॉ० भोलानाथ, राजभाषा
हिन्दी-प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार
दिल्ली 110006, प्रथम संस्करण-1952,
पृ033